Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN(o): 2581-6241
Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 6.831
Volume - 7, Issue - 06, June - 2024

DOIs:10.2018/SS/202406001 --:-- Research Paper / Article / Review

भारतीय दर्शन के आस्तिक एवं नास्तिक संप्रदायों का कबीर के दर्शन पर प्रभाव।

अंशु शेखर

शोधार्थी, हिंदी विभाग , पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना - 800020

ई. मेल- anshushekhar15@gmail.com

शोध सार : दर्शन के क्षेत्र में कबीर विशिष्टता के उस उच्चतम शिखर पर विराजमान हैं जहाँ से एक ओर दृष्टिपात करने पर आस्तिक दर्शन के विभिन्न सिद्धांत दृष्टिगोचर होते हैं, वहीं दूसरी ओर नास्तिक दर्शन के अनेक सिद्धांत भी उसी अनुपात में कबीर के दार्शनिक उक्तियों में समायोजित रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार दर्शन के क्षेत्र में भी कबीर विरूद्धों के बीच सामंजस्य स्थापित करने वाले उस समन्वयकारी प्रवृत्ति के प्रतिनिधित्व करने की क्षमता से ओत प्रोत वह व्यक्तित्व हैं जो येन केन प्रकारेण जनमानस में फैली भ्रांन्तियों को दूर कर सर्वकल्याण करने वाले के रूप में आज भी देदीप्यमान है।

बीज शब्द : भारतीय आस्तिक दर्शन, भारतीय नास्तिक दर्शन, समन्वयकारी प्रवृत्ति, कबीर पर प्रभाव।

1. मूल आलेख:

भारतीय दर्शन मूलत: दो संप्रदायों में विभक्त हैं:- (1) आस्तिक संप्रदाय (2) नास्तिक संप्रदाय। सामान्यतः आस्तिक का अर्थ होता है जो ईश्वर की धारणा में विश्वास रखता है तथा नास्तिक का अर्थ है जो ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखता हो परंतु दर्शनशास्त्र में आस्तिक संप्रदाय तथा नास्तिक संप्रदाय इससे इतर भिन्न अर्थों में अभिव्यक्त होता है। दर्शनशास्त्र के अंतर्गत आस्तिक संप्रदाय की कोटि में वे दर्शन आते हैं जो वेदों के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए उसके प्रामाणिकता में आस्था रखते हैं तथा नास्तिक संप्रदाय की कोटि में वे दर्शन आते हैं जो वेदों के अस्तित्व को स्वीकार तो करते हैं, परंतु उसकी प्रामाणिकता में बिल्कुल भी विश्वास नहीं रखते। वेद को नास्तिक दर्शन निंदा की दृष्टि से देखते हैं तथा इससे विरोध रखते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि कबीर का दर्शन लोक- मंगल तथा लोकरंजन के कार्य में तो अभूतपूर्व तथा अद्वितीय रूप से अपने कार्य का प्रतिपादन कर चुकी थी, पर क्या वह भारतीय आस्तिक दर्शन के प्रमाणमीमांसीय तथा तत्त्वमीमांसीय सिद्धांतों को भारतीय नास्तिक दर्शन के प्रमाणमीमांसीय तथा तत्त्वमीमांसीय सिद्धांतों के बीच जो एक दीवार खड़ी थी, उसे तोड़कर दोनों के जो मूलभूत विचार थे, उसे समीप लाने में वह सार्थक सिद्ध हो सकी है?

इसे समझने के लिए हमें दोनों दर्शनों के बीच जो असमानताओं से संबंधित अवधारणा है, उसका समुचित मूल्यांकन कर एक वृहत् दृष्टि विकसित करनी होगी, तभी इस तथ्य का सम्यक् निरूपण हो पाया कि कबीर इस कार्य में किस हद तक सफल रहे । भारतीय दर्शन के आस्तिक एवं नास्तिक संप्रदायों का मूलभूत अंतर ईश्वर को ही लेकर है।आस्तिक दर्शन में ईश्वर की परिकल्पना है तथा नास्तिक दर्शन में बिना ईश्वर की कल्पना से ही संसार चक्र को गतिमान बतलाया गया है। यहाँ यह द्रष्टव्य है कि कबीर के दर्शन में ईश्वर का स्वरूप जिस प्रकार जनमानस के समक्ष प्रस्तुत है, क्या वह आस्तिक तथा नास्तिक दर्शनों के दो विपरीत से

अनुभवगम्य होने वाले सिद्धांतों के बीच सेतु का कार्य करता है? इस प्रश्न का उत्तर है - हाँ। कबीर का ईश्वर संसार का उपादान कारण भी है तथा निमित्त कारण भी। उपादान कारण का अर्थ है वह तत्त्व जिससे किसी वस्तु का निर्माण किया जाए तथा निमित्त कारण का अर्थ है जिस वस्तु का निर्माण किया जाए उसको बनाने के लिए जिस बाहरी कारण की जरूरत पड़े वह उसका निमित्त कारण है। उदाहरणस्वरूप - कुम्हार मिट्टी से घड़े का निर्माण करता है तो 'मिट्टी', घड़े का उपादान कारण है तथा कुम्हार उस घड़े का निमित्त कारण ।

अब यहाँ प्रश्न यह उठता है कि नास्तिक दर्शनों में ईश्वर की जगह पर पंचतत्त्व तथा द्रव्य, पदार्थ आदि के ही संयोग से संसार चक्र की परिकल्पना की गयी है, इस प्रकार उपादान कारण के रूप में वे संसार के उत्पत्ति में जिन तत्त्वों को मानते हैं वे लगभग आस्तिक दर्शन के समीप हैं, परंतु निमित्त कारण के रूप में वे इनका संयोजन होना तथा पृथक्करण होना स्वतः प्रकृतिवश मानते हैं। अब यहाँ सीधे तौर पर यह प्रश्न उठता है कि कबीर किस प्रकार आस्तिक दर्शन तथा नास्तिक दर्शन के तत्त्वमीमांसीय अवधारणाओं के अंतर्गत ईश्वर विचार में एक सेतु का कार्य करते हैं। ईश्वर को यदि हम एक कार्य माने तो यह अवधारणा की ईश्वर है, यह उपस्थित होने के पूर्व किसी न किसी के मस्तिष्क में यह कारण रूप में अवस्थित अवश्य रही होगी। सांख्य दर्शन का सत्कार्यवाद इस तथ्य का पूर्णरूपेण समर्थन करता है, हालाँकि न्याय - वैशेषिक दर्शन का असत्कार्यवाद इसका भरसक खंडन करने का प्रयास करता है। बहरहाल हम इतना तो समझ ही सकते हैं कि आस्तिक दर्शन में ईश्वर के अस्तित्व को जनता के समक्ष स्वीकृत रूप में प्रस्तुत करने से क्या अभीष्ट निकला है?

ईश्वर के नाम पर अधिकतर कार्य तो यही हुआ कि ब्राहमणवाद तथा पुरोहितवाद का सनातन धर्म में प्रवेश हो गया। जन्म के आधार किसी को उच्च तथा किसी को नीच समझने की प्रवृत्ति पनपने लगी जो कि कबीर के समय आते आते तक पर्याप्त मात्रा में बढ़ चुकी थी। सनातन धर्म में धर्म के नाम पर जातिवाद, भेदभाव तथा छुआछूत समाज में कोढ़ की तरह फैलकर मनुष्यों के मन को विषाक्त कर रहा था । ऐसे में कबीर जब इन सारी चीजों से रूबरू हुए तो उनकी चेतना ने कहा कि जनता को इस शोषणवादी मान्यताओं से जल्द ही मुक्ति न मिली तो परिणाम बहुत ही भयावह होंगे। इस प्रकार ईश्वर की परिकल्पना को तो कबीर ने भारतीय दर्शन के आस्तिक संप्रदाय की भाँति ही मान्यता दी, परंतु उसमें जो शोषणवादी, जातिवादी, ब्राह्मणवादी मान्यताएँ घर कर गयी थीं, उसको सिरे से नकार दिया। इन कुरीतियों को नकारने के क्रम में उन्होंने जो तर्क प्रस्तुत किए वह भारतीय परंपरा के नास्तिक दर्शन यथा - बौद्ध, जैन तथा चार्वाक के समीप जान पड़ता है। कबीर के ही शब्दों में :-

पंडित भूले पढि गुनि वेदा। आप अपन पौ जानु न भेदा ।।

संझा तरपन अउ खट करमा । ई बहु रूप करे अस धरमा ।।

गायत्री जुग चारि पढाई । पूछउ नाद मुकुति किन पाई ।।

अउर के छूये लेत हो छींचा। तुमसे कहउ कवन हैं नींचा ।।

ये गुन गरब करउ अधिकाई। अधिके गरब न होई भलाई ।।

जासु नाम है गरब प्रहारी । सो कस गरवहिं सकै संहारी॥

कुल मरिजाद खोय के, खोजिन पद निरबान।

अंकुर बीज नसाय के, नर भये विदेही थान ।।[1]

अर्थात् पंडित जन वेद तो पढ़ते हैं परंतु उसके गुण आदि को भूल जाते हैं। वे स्वयं ही यह नहीं जान पाते कि वे कौन हैं अर्थात् अपने आत्म स्वरूप का उन्हें विस्मरण हुआ रहता है। वे संध्या तर्पण तथा षट्कर्म अर्थात् विद्या पढ़ना - पढ़ाना, दान देना-लेना, यज्ञ करना-कराना आदि तरह कर्मकांड करते हैं। चारों युग से गायत्री मंत्र पढ़ा-पढ़ाया तथा जाप करवाया जाता रहा है। इसका जाप करने वाले से जाकर पूछो कि उनमें से कितनों ने अब तक मोक्ष पाया है। दूसरे के छू लेने मात्र से तुम पवित्र होने के लिए अपने ऊपर जल छिडकते हो। भला यह बतलाओ कि तुमसे ज़्यादा नीच और कौन होगा। अपनी जाति, वर्ण, विद्या आदि का

तुम बहुत अधिक अहंकार करते हो । अत्यधिक अहंकार से भलाई नहीं होती। जिस ईश्वर का नाम ही गर्वप्रहरी है, फिर वे तुम्हारे अहंकार का संहार करने में भला क्यों देर करेंगे। कबीर आगे कहते हैं हे पंडितों ! वंश की मिथ्या मर्यादा को छोड़कर, निर्वाण अर्थात मोक्ष का अन्वेषण करो । अहंकार रूपी बीज का नाश करके ही मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर सका है।

2. निष्कर्ष :

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि कबीर का दर्शन जनमानस के समक्ष ऐसा चित्र प्रस्तुत करता है जो सर्व- जन समभाव का संदेश देता हो। यही कारण है कि कबीर का दर्शन सम्यक् विचार करने वाले तथा वास्तविकता में समाज का कल्याण देखने वाले सभी वर्ग के लोगों के लिए सर्वमान्य है। कबीर के ही शब्दों में :-

नाना रूप बरन एक कीन्हा। चारि बरन वै काहु न चीन्हा ॥

नष्ट गए करता नहीं चीन्हा । नष्ट भए औरहिं मन दीन्हा ॥

नष्ट भए जिन्ह वेद बखाना। वेद पढे पर भेद न जाना ॥

विमलख करै नैन नहीं सूझा । भया अयान तब किछऊँ न बूझा।।

नाना नाच नचाय के, नाचे नट के भेख

घट घट है अविनासी, सुनहु तकी तुम सेख।।[2]

अर्थात् ईश्वर ने अनेक रंग रूप वाले मानवों को एक वर्ण (एक जाति, एक समान) में पैदा किया।चारों वर्णों में विश्वास रखने वाले अविवेकी मनुष्यों ने परमात्मा द्वारा बनाये गए एक समान मनुष्यों को कभी एक न समझा। वे सभी नष्ट हो गए जिन्होंने ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचाना तथा जिन्होंने परमात्मा से इतर असत्य तत्त्वों में ही अपना मन लगाया, वे सब भी नष्ट हो गए। यहाँ नष्ट होने का तात्पर्य सिर्फ मृत्यु नहीं है। मृत्यु तो उन्हें भी आती है जो जीवन मुक्ति को प्राप्त कर चुके हैं अर्थात जीते जी ही परम तत्त्व का आत्मसाक्षात्कार कर लिया है, परंतु उनकी मृत्यु विदेह मुक्ति अर्थात् मोक्ष का पर्याय बन जाती है, परंतु जो आत्मसाक्षात्कार के बिना मृत्यु को प्राप्त होते हैं, उन्हें भवबंधन से मुक्ति नहीं मिलती।वेद को पढ़ते हुए वे भी नष्ट हो गए जिन्होंने पढ़ कर इसका बखान तो किया, पर इसका मर्म न जान पाए।'वेद' शब्द की उत्पत्ति ही संस्कृत के ' विद् ' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है 'ज्ञान' तथा ज्ञान का अर्थ है 'मुक्ति'। कहा भी गया है- "ज्ञानम ऋते मुक्ति" ज्ञान वही है जो सारे भेद-भाव, बाह्याडंबर, पाखंड, छलावा, दिखावा आदि से मुक्त करके मनुष्य को उसके वास्तविक स्वरूप का परिचय करवा दे।

कबीर ने आगे कहा है कि जिस प्रकार काज़ल लगा लेने से अँधे को दिखाई नहीं पड़ने लगता, उसी प्रकार अविवेकी तथा अज्ञानी मनुष्य जब वेदादि को पढ़ भी लेता है तो उसे कुछ समझ नहीं आता। इसलिए सर्वप्रथम मनुष्य को स्वयं का आत्मावलोकन के द्वारा अपने मन-मस्तिष्क तथा विचार को सम्यक् रूपेण पवित्र करने की आवश्यकता है। आत्मावलोकन की ही महत्ता बतलाते हुए कबीर ने कहा है-

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोई।

जो दिल ढूंढा आपना, तो मुझसे बुरा न कोई ॥

कबीर आगे कहते हैं भ्रमिक गुरुजन मनुष्यों को विभिन्न मत-मतांतर, वर्ण, जाति, संप्रदाय आदि को सत्य बताकर उसे अपने अनुसार कठपुतली की तरह नचाते रहते हैं तथा स्वयं भी अनेक प्रकार के स्वांग बनाकर नट की भाँति नाचते रहते हैं। अतः कबीर कहते हैं हे शेखतकी! तुम सुनो प्रत्येक शरीर में उसी अविनाशी परमात्म तत्त्व की ज्योति विराजमान है। कबीर का राम भी इसी परम तत्त्व की ज्योति के रूप में जनमानस के समक्ष प्रस्तुत है, क्योंकि राम शब्द का तो अर्थ ही है- "रम्यते इति रामः" जो प्रत्येक प्राणी में रमण करे अर्थात् परमात्म रूप में विराजमान रहे, वही राम है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कबीर

ऐसे साधु सरीखे हैं जो आस्तिक तथा नास्तिक दर्शनों से उन कल्याणकारी तत्त्वों को ग्रहण कर अपना दर्शन निर्मित करते हैं जो सर्वजन हितकारी हो । कबीर के ही शब्दों में-

"साधु ऐसा चाहिए चाहिए जैसा सूप सूहाय ।

सार-सार को गहि रहे, थोथा देई उड़ाए ॥

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. ज्ञानानंद जी, साध्वी.सद्गुरु कबीर साहब कृत बीजक, श्री कबीर ज्ञान प्रकाशन केंद्र संत कबीर ज्ञान मार्ग सिहोडीह, सिरसिया, गिरिडीह (झारखंड) 815301, तृतीय संस्करण संवत् 2065, सन् 2008, पृष्ठ संख्या-[1]50
2. वही- पृष्ठ संख्या-[2]81